विवादों में फंसी गरीबी रेखा

सुनील

गरीबी रेखा और देश में गरीबी का आकलन शायद देश का सबसे ज़्यादा चर्चित और विवादास्पद मसला है। सरकारों, योजनाकारों, अर्थशास्त्रियों और बुद्धिजीवियों के बीच तो इस पर गंभीर मतभेद हैं ही, गांवों और शहरों की गरीब बस्तियों में गरीबी रेखा की सूची को लेकर काफी विवाद एवं झगड़े होते रहते हैं। देश के गरीबों के हर आंदोलन में एक मांग गरीबी रेखा की सूची में गरीबों के छूटे नाम शामिल करने की होती है। पिछले डेढ़ दशक से धीरे-धीरे जनकल्याण की सारी योजनाओं एवं कार्यक्रमों के लाभ गरीबी रेखा की सूची के परिवारों तक सीमित कर दिए गए हैं, इसलिए यह सूची काफी महत्वपूर्ण बन गई है। एक तरह से बीपीएल कार्ड किसी सरकारी कार्यक्रम का लाभ प्राप्त करने का लाइसेंस बन गया है।

भारत सरकार के प्रस्तावित खाद्य सुरक्षा विधेयक में भी खाद्य सुरक्षा प्रावधानों को गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों तक सीमित करने का विचार है। इस संदर्भ में खाद्य मंत्रालय द्वारा राज्य सरकारों को लिखे एक पत्र में इस बात पर चिंता ज़ाहिर की गई है कि ये सरकारें योजना आयोग द्वारा निर्धारित गरीबों की संख्या से काफी ज़्यादा बीपीएल राशन कार्ड जारी कर देती हैं। योजना आयोग के पिछले आकलन के मुताबिक देश में 6.52 करोड़ गरीब परिवार हैं, किंतु देश में 10.68 करोड़ बीपीएल राशन कार्ड हो गए हैं। यानी 4.16 करोड़ कार्ड ज़्यादा बन गए हैं। नए अनुमान के मुताबिक तो अब इनकी संख्या और कम 5.91 करोड़ ही होना चाहिए। कई राज्य सरकारों ने भारत सरकार के इस सुझाव पर असहमति जारी की है।

गरीबी रेखा का निर्धारण कैसे होता है? भारत का योजना आयोग देश में गरीबों की संख्या का आकलन कैसे करता है? इसकी तह में जाने पर एक बड़े घपले का पता चलता है।

गरीबी के सरकारी आंकड़े

गरीबी के सरकारी आकलनों की शुरुआत सत्तर के दशक से होती है। गरीबी रेखा के निर्धारण के लिए मनुष्य की न्यूनतम कैलोरी (ऊर्जा) ज़रूरत को आधार बनाया गया। यह माना गया कि ग्रामीण क्षेत्रों में एक व्यक्ति को प्रतिदिन 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षत्रों में 2100 कैलोरी की ज़रूरत होती है। (शहर के लोग कम मेहनत का काम करते हैं, इसलिए उनकी ज़रूरत कम मानी गई।) फिर यह देखा गया कि इतनी कैलोरी वाला भोजन पाने के लिए प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग खर्च या आमदनी कितनी होनी चाहिए। इस हिसाब से देश की गरीबी रेखा ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों के लिए तय की गई और इससे कम में गुज़ारा करने वाले लोग गरीब माने गए। इसके आंकड़े निकालने के लिए राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षणों (एनएसएस) का सहारा लिया गया, जो नियमित रूप से किए जाते हैं। इस गरीबी रेखा को समय-समय पर संशोधित करने के लिए प्रति व्यक्ति मासिक आय को कीमत सूचकांक में वृद्धि के अनुपात में बढ़ाया जाता रहा। इस तरह अभी भी गरीबी रेखा और गरीबों की संख्या का निर्धारण सत्तर के दशक में तय किए गए कैलोरी मानदंडों से जुड़े आय-स्तरों से ही हो रहा है।

इन सरकारी आंकड़ों से तस्वीर काफी उजली दिखाई देती है और देश में गरीबी लगातार घटती हुई मालूम होती है। सरकारी आकलन के मुताबिक वर्ष 1973-74 में देश में 55 प्रतिशत लोग गरीब थे, 1983 में इनका प्रतिशत घटकर 44 रह गया। फिर 1993-94 में गरीबों का प्रतिशत और घटकर 36 तथा 1999-2000 में 26 रह गया। वर्ष 2004-2005 में ज़रूर यह मामूली बढ़ा तथा 27.5 प्रतिशत हो गया। इन गरीबों में लगभग तीन-चौथाई गावों में रहते हैं।

इस प्रकार वैश्वीकरण और आधुनिक विकास के समर्थक कह सकते हैं कि विकास के फायदे नीचे तक 'रिस' रहे हैं

और गरीबी कम हो रही है। हालांकि इन सरकारी आंकड़ों के मुताबिक भी चालू दशक में गरीबी कम नहीं हो रही है जबकि इस दशक में अर्थ व्यवस्था की विकास दर काफी ज़्यादा रही है।

लेकिन गरीबी के सरकारी आंकड़े कई मायनों में गलत, भ्रामक और त्रुटिपूर्ण हैं। हालांकि गरीबी रेखा को मात्र कैलोरी खपत से तय करने की सरकारी पद्धति में काफी समस्याएं हैं, किन्तु सरकार द्वारा तय की गई गरीबी रेखा बाद के वर्षों में उस न्यूनतम कैलोरी स्तर को प्रदान करने वाली भी नहीं रह गई है, जिसको लेकर सत्तर के दशक में गरीबी निर्धारण की शुरुआत की गई थी। इसका खुलासा पिछले दिनों भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा डॉ. एन.सी. सक्सेना की अध्यक्षता में बने विशेषज्ञ समूह की रपट में भी किया गया है। इसके पहले भी डॉ. उत्सा पटनायक, ज़्यां ड्रेज़ आदि अर्थशास्त्रियों ने इसे उजागर किया था, किन्तु एक सरकारी समिति की रपट में इसकी स्वीकारोक्ति महत्वपूर्ण है।

बढ़ती खाई

उदाहरण के लिए, वर्ष 2004-05 की कीमतों पर सरकार ने गरीबी रेखा ग्रामीण क्षेत्रों में 356 रुपए प्रति व्यक्ति प्रति माह तथा शहरी क्षेत्रों में 539 रुपए प्रति व्यक्ति प्रति माह पर निर्धारित की है। किन्तु आय के इस स्तर पर इस वर्ष में मात्र 1800 कैलोरी का उपभोग संभव था। यदि निर्धारित 2400 एवं 2100 कैलोरी के उपभोग को देखा जाए, तो इस वर्ष में गरीबी रेखा की आय गांवों में करीब 700 रुपए प्रति माह एवं शहरों में 1000 रुपए प्रति माह होनी चाहिए। और इस स्तर पर देश में गरीबों का प्रतिशत 75 से ऊपर आएगा, न कि 27.5 प्रतिशत। आंकड़ों से पता चलता है कि स्वयं सरकारी कैलोरी मापदंडों के मुताबिक देश में गरीबी का अनुपात कम होने के बजाय 1987 के बाद से लगातार बढ़ रहा है।

वर्ष 1999-2000 में योजना आयोग ने गरीबी रेखा के समकक्ष प्रति व्यक्ति मासिक आय को ग्रामीण क्षेत्र में 328 रुपए और शहरी क्षेत्र में 454 रुपए माना था। किन्तु यदि 2400 और 2100 कैलोरी के प्रतिमानों को लिया जाए, तो उस वर्ष के राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के मुताबिक यह आय क्रमशः 565 और 628 रुपए होनी चाहिए थी। और यदि इस स्तर को गरीबी रेखा माना जाए तो भारत में उस वर्ष की आबादी में गरीबों का अनुपात 70.1 प्रतिशत हो जाएगा, जबकि सरकार मात्र 26.10 प्रतिशत ही गरीब बता रही है। जैसा कि सक्सेना समिति भी स्वीकार करती है, गरीबों की एक बहुत बड़ी संख्या को बीपीएल योजनाओं के फायदों से वंचित किया जा रहा है। वर्ष 1999-2000 में सरकार की गलत गणनाओं के कारण देश की 44 प्रतिशत आबादी या 44 करोड़ लोगों को बाहर कर दिया गया है, जो स्वयं सरकार द्वारा तय किए गए मानदंडों के मुताबिक गरीबों की श्रेणी में आना चाहिए। वर्ष 2004-05 में बाहर किए गए गरीबों की यह संख्या और बढ़कर 48 प्रतिशत या लगभग 54 करोड़ हो गई।

इस फर्क का कारण यही है कि योजना आयोग ने हर बार कैलोरी उपभोग के अनुरूप गरीबी रेखा की मासिक आय निर्धारित करने के बजाय 1973-74 में तय की गई आय को मात्र मूल्य सूचकांक वृद्धि के अनुपात में बढ़ाकर अपने कर्तव्य की इतिश्री मान ली। किन्तु इस बीच न केवल विभिन्न वस्तुओं-सेवाओं की तुलनात्मक कीमतों में फर्क आया है, बल्कि आम लोगों के उपभोग में अन्य मदों पर खर्च बढ़ा है तथा भोजन पर खर्च का हिस्सा कम हुआ है। इसे साधारण परिवारों की समृद्धि या बेहतरी का सूचक नहीं माना जा सकता, क्योंकि उस हालत में भी एक न्यूनतम कैलोरी वाला भोजन तो वे करते। ऐसा प्रतीत होता है कि इलाज, परिवहन, ईंधन आदि कई मदों पर गरीबों का खर्च बढ़ रहा है तथा मजबूर होकर उन्हें भोजन में कटौती करना पड़ रहा है। यह गंभीर अभाव एवं कंगाली की हालत की ओर इशारा करता है।

यह विश्वास करना कठिन है कि गरीबी रेखा निर्धारण में इतनी बड़ी विसंगति योजना आयोग में बैठे विशेषज्ञों, अर्थशास्त्रियों और सांख्यिकीविदों की नज़र से छूट गई है। सरकार द्वारा निर्धारित गरीबी रेखा पर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन कैलोरी उपभोग लगातार कम होता गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में

यह वर्ष 1977-78 में 2170 कैलोरी, वर्ष 1983 में 2060 कैलोरी, वर्ष 1993-94 में 1980 कैलोरी, वर्ष 1999-2000 में 1890 कैलोरी तथा 2004-05 में 1820 कैलोरी रह गया है। अर्थात भारतीय जनता का कैलोरी उपभोग निरंतर घटता जा रहा है।

आंकड़ों से पता चलता है कि भारतीयों का प्रति व्यक्ति प्रतिदिन कैलोरी एवं प्रोटीन उपभोग 1983 से लगातार कम होता गया है। किन्तु ये आंकड़े पूरे भारत के हैं। यह भी पता चलता है कि गांवों के लोगों का कैलोरी उपभोग 2400 कैलोरी के निर्धारित मानदंड से लगातार काफी कम है और उसमें 1987-88 के बाद कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ है। इसमें भी सबसे गरीब चौथाई ग्रामीण आबादी का कैलोरी उपभोग ऊपर की चौथाई आबादी के मुकाबले 30 से 50 प्रतिशत कम है। सच्चाई यह है कि गरीबों को ज़्यादा मेहनत का काम करने के कारण ज़्यादा कैलोरी की ज़रूरत होती है।

कुछ विद्वानों ने यह दलील देने की कोशिश की है कि कैलोरी का घटता हुआ उपभोग अभावों का नहीं, बेहतर ज़िन्दगी का द्योतक है जिसमें शारीरिक मेहनत कम हो रही है। यह ऊपर के संपन्न हिस्से के लिए सही हो सकता है, किन्तु नीचे की गरीब मेहनतकश आबादी को तो काफी मेहनत का काम करना पड़ता है और उनका कैलोरी उपभोग बहुत कम है। यदि उनकी आर्थिक हालत बेहतर होती, तो निश्चित ही यह बढ़ना चाहिए था। दूसरी बात यह है कि पिछले दशकों में भारत में जन्म दर कम हुई है और आबादी में बच्चों के मुकाबले वयस्कों का अनुपात बढ़ा है। वयस्कों को ज़्यादा कैलोरी की ज़रूरत होती है, इसलिए भारतीय आबादी की औसत कैलोरी खपत तो बढ़नी चाहिए थी। स्पष्ट है कि घटती कैलोरी खपत भारत की बड़ी आबादी की लगातार बढ़ती कंगाली, बदहाली, अभावग्रस्तता और भुखमरी का संकेत है।

इसकी पुष्टि अन्य स्रोतों से भी होती है। देश में प्रति व्यक्ति उपलब्ध अनाज की मात्रा पहले तो बढ़ रही थी, किन्तु 1991 के बाद से लगातार गिर रही है। वर्ष 1951 में यह 334 ग्राम प्रतिदिन थी, जो 1991 में बढ़कर 468.5 ग्राम हो गई थी, किन्तु उसके बाद घटते हुए 2007 में 407.4 ग्राम रह गई। किन्तु दालों की प्रति व्यक्ति उपलब्धि में तो 1961 से ही लगातार गिरावट आ रही है। देश में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन दाल की उपलब्ध मात्रा 1951 में 60.7 ग्राम से बढ़कर 1961 में 69 ग्राम हुई थी, किन्तु फिर यह लगातार घटते हुए 2007 में 35 ग्राम यानी आधी रह गई। भारतवासियों के लिए अनाज कैलोरी का और दालें प्रोटीन का प्रमुख स्रोत हैं। फिर ये मात्राएं समस्त भारत की औसत हैं, यानी गरीब या साधारण हैसियत के भारतीयों के लिए ये गिरावट और ज़्यादा हो सकती है। अर्थात बड़ी संख्या में भारतवासी भरपेट और संतुलित भोजन नहीं कर पाते हैं।

भारत में कुपोषण के गंभीर हालात से भी इसकी तसदीक होती है। वर्ष 2005-06 में हुए राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण से पता चलता है कि इस देश के 3 वर्ष से छोटे बच्चों में लगभग आधे (46 प्रतिशत) कुपोषित हैं और तीन चौथाई से ज़्यादा (79 प्रतिशत) कमज़ोर एवं एनीमिया से ग्रस्त हैं। खून की कमी एवं कमज़ोरी से ग्रस्त महिलाओं का प्रतिशत सात वर्ष पहले के मुकाबले घटने के बजाय 52 से बढ़कर 56 हो गया है। एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था द्वारा तैयार विश्व भूख सूचकांक के अनुसार 118 देशों में भारत का स्थान बहुत नीचे 94 पर है। यहां तक कि इथोपिया भी भारत से ऊपर है। इसी स्थिति को डॉ. उत्सा पटनायक ने 'भूख का गणराज्य' का नाम दिया है।

भारत सरकार द्वारा तय कैलोरी मानदंडों पर भी कई सवाल उठे हैं और इन्हें अपर्याप्त बताया गया है। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद ने 2004 के अपने एक प्रकाशन में बताया है कि भारी मेहनत का काम करने वाले पुरुष को 3800 कैलोरी तथा महिला को 2925 कैलोरी मिलना चाहिए। फिर एक इंसान को सिर्फ कैलोरी ही नहीं, प्रोटीन, वसा, खनिज लवण, विटामिन आदि कई तरह के पोषक तत्वों की ज़रूरत होती है। इसके अलावा भी कई प्रकार की ज़रूरतें होती हैं और उन पर खर्च में भी समय के साथ परिवर्तन होते हैं। सरकार द्वारा गरीबी रेखा के निर्धारण में इन सब की उपेक्षा की गई है। वास्तव में यह गरीबी रेखा नहीं, 'भुखमरी की रेखा' है।

बहुआयामी गरीबी

दरअसल गरीबी की समस्या एक बहुआयामी समस्या है और इसे सिर्फ कैलोरी उपभोग स्तर से नहीं समझा जा सकता। कुपोषण, बीमारियों व भूख से मौतें, चिकित्सा का निजीकरण, अशिक्षा और बीच में शाला-त्याग, आवासहीनता, बढ़ती मंहगाई, किसानों व बुनकरों की आत्महत्याएं, विस्थापन, बेरोज़गारी आदि इसके अलग-अलग चेहरे व पहलू हैं।

उदाहरण के लिए, प्राकृतिक संसाधनों के विनाश एवं उनसे बेदखली से भी भारत की ग्रामीण आबादी के बड़े हिस्से का जीवन प्रभावित हुआ है। जंगलों, चारागाहों, खेतों, नदियों, तालाबों, समुंदर आदि से उनकी जीविका चलती रही है। उनकी कई ज़रूरतें (जैसे ईंधन, चारा, मकान-निर्माण सामग्री, लकड़ी, बांस, जड़ी-बूटी, कंद-मूल, फल, मछली आदि) बिना बाज़ार में जाए पूरी होती रही हैं। जैसे-जैसे इनसे वंचित होकर उन्हें बाज़ार से पूर्ति करनी पड़ रही है, उनकी अभावग्रस्तता एवं बदहाली बढ़ रही है। यह स्थिति गरीबी रेखा के मौद्रिक आकलनों में नहीं झलकती है। यह बिलकुल संभव है कि लोगों की नगद आय बढ़ रही हो, कीमत वृद्धि से भी ज़्यादा बढ़ रही हो, किन्तु कुल मिलाकर वे ज़्यादा वंचित एवं अभावग्रस्त होते जा रहे हैं। विस्थापन दो तरह के होते हैं - बड़े बांधों, खदानों, कारखानों, शहरों के विस्तार, फायरिंग रेंज आदि से सीधे विस्थापितों की संख्या करोड़ों में पहुंच गई है। दूसरा, प्राकृतिक संसाधनों के क्षय तथा ग्रामीण आबादी की पहुंच व उपयोग पर रोक लगाने से अप्रत्यक्ष एवं क्रमिक विस्थापन भी काफी बढ़ा है। एक अनुमान के मुताबिक 1951 से 1990 के बीच 2.13 करोड़ लोग विभिन्न परियोजनाओं से विस्थापित हुए हैं। इनमें 40 प्रतिशत से ज़्यादा आदिवासी हैं।

गरीबी का एक सामाजिक पहलू भी है। देश के गरीबों में काफी बड़ी संख्या दलितों, आदिवासियों और अति पिछड़ों की है। इसी तरह महिलाओं का एक बड़ा तबका है जो गरीबों एवं वंचितों के अंदर वंचित, उपेक्षित एवं भेदभाव का शिकार है। लगभग हर घर की स्त्री सबसे अंत में, बचा-खुचा और बासी खाना खाती है। भोजन, शिक्षा, इलाज और लाड़-दुलार में लड़कों की तुलना में लड़कियों के साथ भेदभाव भारतीय घरों में आम बात है। सामाजिक भेदभाव के साथ पूंजीवादी शोषण और विषमता हालात को और भयानक बना देते हैं। गरीबी रेखा और गरीबी का सरकारी आकलन इन्हें व्यक्त करने में बिलकुल अक्षम है।

गरीबी रेखा और योजना आयोग के गरीबी के आकलनों का अधूरापन और विसंगतियां अब सर्वमान्य हो चली हैं और कई विद्वानों ने गरीबी का वैकल्पिक अनुमान लगाने की कोशिश की है। महेन्द्र देव और रवि नामक दो अर्थशास्त्रियों ने सिर्फ शिक्षा और स्वास्थ्य पर खर्च को जोड़कर गरीबी का आकलन किया, तो पाया कि 2004-05 में आबादी में गरीबी का अनुपात 27.5 के स्थान पर 35.8 प्रतिशत होना चाहिए। गौरतलब है कि 1973 में जब सरकार ने कैलोरी उपभोग (यानी भोजन खर्च) पर आधारित गरीबी रेखा की आय निर्धारित की थी, तब शिक्षा व स्वास्थ्य पर गरीबों का खर्च नहीं के बराबर था। तब या तो ये खर्च सरकार उठाती थी या फिर गरीब लोग अशिक्षित एवं आधुनिक इलाज के बगैर रहते थे। (देशी, घरेलू एवं जड़ी-बूटी आधारित पद्धतियों से वे ज़रूर इलाज करते थे)। शिक्षा व स्वास्थ्य के निजीकरण से ये खर्च गरीब परिवारों के बजट में भी काफी महत्वपूर्ण हो गए हैं।

गुरुस्वामी और अब्राहम नामक दो विद्वानों ने सारी बुनियादी ज़रूरतों की लागत जोड़ते हुए गरीबी रेखा के निर्धारण का एक प्रयास पिछले दिनों किया है। भोजन, इलाज, कपड़े, घर, ईंधन, बिजली एवं अन्य विविध खर्चों को न्यूनतम स्तर पर जोड़ने से यह 840 रुपए प्रति माह प्रति व्यक्ति आया। सरकार द्वारा तय की गई वर्तमान गरीबी रेखा से यह लगभग दुगना है। इस स्तर पर देश की 68.5 प्रतिशत आबादी (और 84 प्रतिशत ग्रामीण आबादी) गरीबी रेखा के नीचे है, जो सरकारी अनुमान से ढाई गुना है।

इस मामले में सबसे सीधा बयान एक और सरकारी आयोग से आया है। अर्जुन सेनगुप्ता की अध्यक्षता में बने 'असंगठित क्षेत्र के उद्यमों पर राष्ट्रीय आयोग' ने बताया है कि देश की 77 प्रतिशत आबादी या 83 करोड़ लोग 20 रुपए प्रतिदिन से कम पर गुज़ारा करते हैं। इसी को गरीबी का सबसे अच्छा आकलन मानना चाहिए।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गरीबी के आकलन के लिए 1 या 2 डॉलर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन को गरीबी रेखा माना जाता है। विश्व बैंक ने अपने ताज़ा आकलन में 1 डॉलर की रेखा को सुधारते हुए सवा डॉलर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन को गरीबी रेखा माना है। इसमें बताया है कि भारत में वर्ष 2005 में 41.6 प्रतिशत लोग या 45.6 करोड़ लोग गरीबी रेखा के नीचे थे और दुनिया में सबसे ज़्यादा गरीब लोग भारत में ही रहते हैं। दुनिया के कुल गरीबों की एक तिहाई संख्या भारत में है। विश्व बैंक का यह आकलन भी भारत सरकार के आकलन से काफी ज़्यादा है। किन्तु इसकी भी काफी आलोचना हुई है और इसे गरीबी को कम बताने वाला माना गया है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गरीबी का एक और आकलन एशियाई विकास बैंक ने किया है, जिसने 1.35 डॉलर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन को गरीबी रेखा माना है। इस आकलन के मुताबिक भारत में 62.2 करोड़ लोग गरीब हैं और यह एशिया का दूसरा सबसे गरीब देश है।

गरीबी रेखा के निर्धारण के बारे में एक और आपत्तिजनक बात यह है कि इसमें इंसान की न्यूनतम ज़रूरतों को स्थिर मान लिया गया है। जैसे-जैसे राष्ट्रीय आय बढ़ेगी, लोगों की ज़रूरतें व प्राथमिकताएं भी बदल सकती हैं, यह सोचा ही नहीं गया। बढ़ती हुई राष्ट्रीय आय का हिस्सा समान अनुपात में (या ज़्यादा अनुपात में) नीचे की आबादी को मिले, यह सोचने की ज़रूरत भी नहीं समझी गई। इसे इस तरह भी देखा जा सकता है। वर्ष 1973-74 में जब गरीबी रेखा का निर्धारण शुरू हुआ था, गरीबी रेखा की आय, देश की औसत प्रति व्यक्ति आय का 62 प्रतिशत थी। किन्तु 2005-06 में यह मात्र 17 प्रतिशत रह गई। गरीबी, गैर-बराबरी और बेरोज़गारी के सवालों को बिल्कुल अलग-अलग कर दिया गया है। दूसरे शब्दों में, यह संभव है कि देश में गैर-बराबरी बढ़ती जाए और गरीबों के आंकड़ों में कमी भी दिखाई दे। वास्तव में, भारतीय अर्थ व्यवस्था दुनिया की सबसे ज़्यादा गैर-बराबर व्यवस्थाओं में से एक है, और यह गैर-बराबरी बढ़ती जा रही है।

सरकार की आर्थिक नीतियों और विकास नीति से गरीबी का सवाल जुड़ा है। वर्ष 1991 से आई वैश्वीकरण और मुक्त व्यापार की नवउदारवादी व्यवस्था ने भी गरीबी को बढ़ाने का काम किया है। बेरोज़गारी, शोषण, गैर-बराबरी, विस्थापन, जल-जंगल-ज़मीन से बेदखली, मुक्त व्यापार तथा साम्राज्यवाद का सीधा सम्बंध गरीबी से है। इन व्यापक प्रश्नों से गरीबी के सवाल को काटकर गरीबी रेखा के आंकड़ों में उलझा देना भी एक चाल है।

इसलिए गरीबी रेखा के इस भ्रमजाल को समझना और उससे बाहर आना ज़रूरी है। यह मांग की जानी चाहिए कि जनकल्याण की जो भी योजनाएं हों और जो भी कार्यक्रम हों, वे देश की साधारण आम जनता के लिए होने चाहिए, सिर्फ गरीबी रेखा की सूची के परिवारों के लिए नहीं। जिस देश की 75-80 प्रतिशत आबादी गरीबी एवं अभावों में जी रही है, वहां इसके अलावा कोई विकल्प नहीं है। इसके लिए सरकार साधनों की कमी का रोना रोएगी। किन्तु यदि अमीरों को दी जाने वाली मदद व करों में रियायत बंद कर दी जाए तथा काला धन जब्त कर लिया जाए तो कोई कमी नहीं रहेगी। आखिर क्यूबा जैसा छोटा-सा देश अमरीका और उसके मित्र देशों का बहिष्कार झेलते हुए भी अपनी पूरी आबादी को सरकारी खर्च पर दुनिया की सर्वश्रेष्ठ स्वास्थ्य सुविधाएं, पोषण, संपूर्ण शिक्षा, और रोज़गार उपलब्ध करा सकता है, तो भारत क्यों नहीं कर सकता? असली सवाल साधनों का नहीं, राजनैतिक इच्छा का है।

यदि सरकारी सुविधाओं और कार्यक्रमों में कोई भेद करना ही है, तो वह अमीरों को बाहर करके किया जा सकता है। 'आयकर का भुगतान करने वाले', 'निजी मोटर गाड़ी रखने वाले' जैसे कुछ मानक बनाकर अमीर परिवारों की एक नकारात्मक सूची बनाई जा सकती है। यह ज़्यादा सरल और व्यावहारिक भी होगा। दूसरे शब्दों में, देश को एक गरीबी रेखा के बजाय अमीरी रेखा की ज़रूरत है। इस अमीरी रेखा की सूची के लोगों को सरकारी मदद व अनुदान से वंचित किया जा सकता है। देश में ज़मीन की हदबंदी की ही तरह संपत्ति व आमदनी की एक ऊपरी सीमा बनाने पर भी गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए। हम यह नहीं भूल सकते कि अमीरी और गरीबी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***